ISSN:0975-5756



कला - वैभव
KALĀ - VAIBHAV

संयुक्तांक 23-24 (वर्ष 2016-17, 2017-18)
विभागीय शोध- जर्नल (रेफरीड)



प्रधान संपादक
डॉ. मंगलानंद झा
प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग
इंदिरा कला संगीत विश्वविद्यालय, खैरागढ़ (छ.ग.)
(नेक द्वारा 'A' ग्रेड प्रत्यायित)

वित्तीय सहयोग : विश्वविद्यालय अनुदान आयोग नई दिल्ली



कला–वैभव

संयुक्तांक 23–24

भारतीय कला, इतिहास, संस्कृति, पुरातत्त्व, साहित्य का वार्षिक शोध जर्नल (रेफरीड)

प्रकाशक : इन्दिरा कला संगीत विश्वविद्यालय, खैरागढ़ (छ.ग.)–491881।

ISSN : 0975 - 5756

प्रधान संपादक : डॉ. मगलानंद झा, प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग, इन्दिरा कला संगीत विश्वविद्यालय, खैरागढ़।

वार्षिक सदस्यता –

व्यक्तिगत	–	675/–
संस्थागत	–	750/–

विशिष्ट आभार : विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, नई दिल्ली।

कला–वैभव (संयुक्तांक 23–24) में प्रकाशित लेखों/रचनाओं में वर्णित विषय–वस्तु/तथ्यों तथा निष्कर्षों इत्यादि का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व सम्बन्धित लेखकों/रचनाकारों का है। संपादकगण अथवा प्रकाशक की सहमति आवश्यक नही है।

संपर्क :

कुलसचिव	–	07820 234232
डॉ. एम.एन. झा	–	94241–11394
ई–मेल	–	kalavaibhav@ iksv.ac.in

(मुखपृष्ठ–चित्र लज्जा–गौरी, खैरागढ़)।

कला–वैभव

संयुक्तांक 23–24

अनुक्रमणिका

❖ शुभकामना संदेश

- प्रोफेसर (डॉ.) माण्डवी सिंह,
  कुलपति, इन्दिरा कला संगीत विश्वविद्यालय, खैरागढ़।
- प्रो. (डॉ.) इन्द्रदेव तिवारी,
  अधिष्ठाता, कला–संकाय।
- श्री पी. एस. ध्रुव,
  कुलसचिव, इन्दिरा कला संगीत विश्वविद्यालय, खैरागढ़।

❖ सम्पादकीय

- डॉ. मंगलानंद झा,
  प्रधान संपादक।

❖ अनुक्रमाणिका

समीपवर्ती सीमाओं से प्रभावित बस्तर का मूर्तिशिल्प

आराधना चतुर्वेदी

कलात्मक अभिव्यक्ति अपनी विषयवस्तु एवं निर्माणविधा में समाज की धारणाओं एवं तकनीकों का प्रतिबिम्ब प्रस्तुत करती हैं। ये धारणायें एवं तकनीके संस्कृति का अंग होती हैं। समर्थ एवं प्रतिभाशाली शासकों के काल में कला एवं स्थापत्य की नयी शैलियां अस्तित्व में आती हैं, पुरानी नवीन रूप ग्रहण करती हैं तथा उनका दूसरे क्षेत्रों पर भी प्रभाव पड़ता है।

भारतीय कला मुख्यतः लोगो की धार्मिक मान्यताओं का मूर्त रूप रही है। यह वस्तुतः धार्मिक एवं सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति रही है। ब्राम्हण, बौद्ध एवं जैन धर्म भारतीय परम्परा के तीन मुख्य धर्म रहे हैं। ब्राम्हण धर्म, वैदिक धारा का प्राचीन धर्म था, जिसके पांच प्रमुख सम्प्रदायों – वैष्णव, शैव, शाक्त, गाणपत्य और सौर से संबंधित मंदिरों और मूर्तियों के प्रभूत उदाहरण भारत के सभी क्षेत्रों से मिलते है।

बस्तर क्षेत्र विभिन्न प्रदेशों से जुड़े होने के कारण यहां की मूर्तिकला में इन प्रदेशों के मूर्तिशिल्प का स्पष्ट प्रभाव दिखाई पड़ता है, जो अलग अलग शैलियों में निर्मित हैं।

काकतीय शैली –

काकतीय आन्ध्र या तेलंगाना क्षेत्र के शासक थे, जिनमें बेत प्रथम, प्रोल प्रथम, बेत द्वितीय, प्रोल द्वितीय गणपति, महादेव जैसे शासक हुए, जिन्होंनें 11वीं. शती. ई. के प्रारम्भ से 13वीं. शती. ई. के अन्त तक शासन किया। काकतीय राजवंश से संबंधित मुख्य कला स्थल वारंगल, नलगोण्ड, गुन्टुर, नेल्लोर और कुर्नूल रहे हैं। काकतीयों की राजधानी वारंगल थी। इनके काल में चालुक्य शैली में तेलंगाना के विभिन्न क्षेत्रों में मंदिरों और मूर्तियों का निर्माण हुआ, जिनमें चालुक्य एवं यादव, स्थापत्य एवं मूर्तिकला के विभिन्न तत्त्वों का सुन्दर सामंजस्य दिखाई पड़ता है। काले बेसाल्ट पत्थर में निर्मित काकतीय मूर्तियों में अलंकरणों की अतिशय प्रवृत्ति मिलती है, जिन्हें अत्यन्त सूक्ष्मता के साथ कुछ इस प्रकार उकेरा गया है, जो धातु शिल्प का भाव व्यक्त करती है। लक्षणों एवं लांछनों से बोझिल काकतीय मूर्तियाँ आकर्षक और भव्य होते हुए भी गतिशील और जीवन्त होने के स्थान पर स्थिर भाव वाली दिखाई देती है। काकतीय मूर्तिकला पर पूर्वी चालुक्यों की अपेक्षा पश्चिमी चालुक्यों का अधिक प्रभाव था।

वेंगी शैली –

आन्ध्र के वेंगी क्षेत्र में कुब्ज विष्णुवर्धन ने चालुक्यों की पूर्वी शाखा की स्थापना की। स्वयं कुब्ज विष्णुवर्धन कला का महान संरक्षक था। उसी के काल में शिव के एक विशाल मंदिर का हुआ, जिसके प्रवेश द्वार पर एकाश्म पत्थर में बनी विशालकाय द्वारपालों की आकृतियाँ पूर्वी चालुक्यों के प्रारम्भिक मूर्तिकला के उदाहरण हैं।

प्रारम्भिक काल के पूर्वी चालुक्यों की मूर्तियां बादामी के चालुक्यों की मूर्तियों के समान विशालकाय हैं। गोदावरी जिले के बिक्कावोल नामक स्थान से प्रारम्भिक काल की

एकाश्म पत्थर में बनी गणेश की द्विभुजी महाकाय मूर्ति मिली है, जिसमें गणेश के सिर पर बना पद्म मुकुट अत्यंत मनोहारी है।

पूर्वी चालुक्यों की कला में प्रारम्भिक पश्चिमी चालुक्यों, राष्ट्रकूटों, पूर्वी गंग, चेदि, पल्लव और चोल कला का मिश्रित प्रभाव दिखाई देता है।

कलचुरियों के समय में विकसित मध्यभारत की कला–शैलियों में डाहल तथा दक्षिण कोसल की शैलियों का विशेष महत्व था। अन्य भारतीय शासकों के समान कलचुरि भी कला के प्रेमी थे। इनके समय में डेक्कन, डाहल, दक्षिण कोसल कला के प्रमुख केन्द्र थे।

डाहल शैली –

डाहल मूर्तिकला में प्रारम्भिक उदाहरणों में नांदचांद(पन्ना) से प्राप्त मातृका मूर्तियां उल्लेखनीय हैं। वाहनों से युक्त मातृका मूर्तियों के मुख गोल हैं और बनावट में देहयष्टि की रेखाओं का सरल प्रवाह उल्लेखनीय है। अर्द्धनारीश्वर मूर्ति, ललितासन मूर्ति, राजा–रानी की आकृति तथा परिचारक एवं परिचारिका की आकृतियां भी इस शैली के उदाहरण हैं। विभिन्न क्षेत्रों में बने मंदिरों पर उत्कीर्ण मूर्तियों के आधार पर कलचुरि मूर्तियों के कमिक विकास की जानकारी मिलती है। डाहल शैली के उदाहरणों के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि इस शैली की मूर्तिकला में विकास के कई कम थे। ये मूर्तियां अधिकांशतः मंदिरों के ललाटबिम्बों पर उत्कीर्ण हैं। इनमें नटेश का गतिशील नृत्य भंगिमाओं में अंकन हुआ। नटेश के अतिरिक्त रहली के सूर्य मंदिर की शिव, विष्णु, ब्रह्मा, उमामहेश्वर और हरिहर की मूर्तियां भी उल्लेखनीय हैं।

डाहल शैली की 9वीं. शती. की विशेषताएं बेला–बैजनाथ (रीवां) एवं बिनायका (सागर) के मंदिरों की मूर्तियों में दिखलाई देती है। बैजनाथ के मंदिर के द्वार के सिरदल पर नवग्रह, लकुलीश तथा पार्श्वो की ब्रह्मा एवं विष्णु की आकृतियां उल्लेखनीय हैं। डाहल शैली की लकुलीश की यह एकमात्र मूर्ति है।

डाहल शैली में मुख्यतः शैव मूर्तियों की प्रधानता दिखाई देती है। जिनमें शिव की योगीश्वर, गजान्तक और त्रिपुरान्तक मूर्तियां प्रमुख है।

दक्षिण कोसल शैली –

दक्षिण कोसल में यद्यपि कलचुरियों के पूर्व पाण्डु, नल एवं बाण वंशो के शासकों का आधिपत्य था, किन्तु कला की दृष्टि से कलचुरि शासकों का काल उल्लेखनीय रहा है। दक्षिण कोसल की कलचुरि कालीन मूर्तियां स्थानीय विशेषताओं से युक्त है। इस समय शारीरिक अनुपात की दृष्टि से लम्बी मूर्तियां बनी। मुख मांसल और कटि एवं पैर कुछ तिरछे बनाये गये हैं। शिल्प सज्जा की दृष्टि से जांजगीर के शैव मंदिर की मूर्तियों का उल्लेख किया जा सकता है। मंदिर के विभिन्न भागों पर दिक्पाल, अप्सरा, व्याल एवं विष्णु के चतुर्विंशति रूप की मूर्तियां उकेरी गई हैं। विष्णु के अतिरिक्त देव आकृतियों में शिव और ब्रह्मा की मूर्तियाँ तथा विशेष वेशभूषा एवं जटाभार युक्त योगियों की आकृतियां भी उल्लेखनीय हैं।

दक्षिण कोसल की मूर्तियों में सज्जा अथवा अलंकरण की प्रचुरता दिखाई देती है। कतिपय मूर्तियां एक विशिष्ट कलाधारा की ओर संकेत करती हैं, ये मूर्तियां व्यक्ति अथवा

शबीह (पोर्ट्रेट) अंकन है। इनमें राजा–रानी, मंत्री, अमात्य आदि की मूर्तियाँ उल्लेखनीय हैं। यहाँ से देव आकृतियों एवं प्रतिकृतियों के अतिरिक्त कुछ अन्य विषयों जैसे – रामकथा से संबंधित– बालिवध, सीताहरण, रामवनगमन, सेतुबंध, राम–रावण युद्ध आदि का भी अंकन प्राप्त होता है। इसके अलावा यहां से काम कला से संबंधित आकृतियां भी दिखाई देती हैं। डाहल शैली में ऐसे अंकनो का अभाव है।

दक्षिण कोसल शैली का विस्तार पर्याप्त व्यापक था। महाराष्ट्र के चांदा जिले में मारकण्डा स्थित मंदिर पर बनी अप्सरा एवं नायिका मूर्तियों में यह प्रभाव स्पष्टतः देखा जा सकता है। इनके अलावा शैव संबंधित प्रतिमाओं में बस्तर क्षेत्र के उमामहेश्वर, केसरपाल के भैरव, बारसूर मंदिर के उमामहेश्वर, दंतेवाड़ा के शिव, भैरव, नंदी, शिवलिंग, पेदाम्मटूर के पास सकल नारायण में शिवलिंग एवं नंदी, गुल्लापेटा में चतुर्भुजी शिव आदि है। नारायणपुर में विष्णु मंदिर में स्थापित विष्णु, विष्णु के अंतिम अवतार ''कल्कि नारायण'' की प्राण प्रतिष्ठा टेमरा नामक ग्राम से ज्ञात होता है। कुरूसपाल, केसरपाल, माधोता, देवरली आदि जगहों से विष्णु की प्रतिमाएँ मिली हैं। भैरमगढ़ से अष्टभुजी हरिहर हिरण्यगर्भ की अलंकृत प्रतिमा प्राप्त हुई है। शाक्त में महिषमर्दिनी, काली, चामुण्डा, सप्तमातृकायें आदि की मूर्तियां मिली हैं।

छिन्दक नागवंशी शासकों की कुल देवी 'मणिकेश्वरी' थी, इसलिए इस क्षेत्र में शक्ति की पूजा प्रचलित रही होगी। भैरमगढ़ में चतुर्भुजी पार्वती, समलूर में गौरी, देवरली में अष्टभुजी दुर्गा, लक्ष्मी, सरस्वती, भैरवी, वाराही, चामुण्डा, शिवा, महिषासुरमर्दिनी, कात्यायनी, अम्बिका, इन्द्राणी आदि की प्रतिमाएं इस क्षेत्र से प्राप्त हुई हैं। गणेश की प्रतिमाएँ बारसूर से मिली है। बौद्ध धर्म से संबंधित प्रतिमाएं भोंगापाल से प्राप्त हुई है। लगभग 14 जैन धर्म से संबंधित प्रतिमाएं भी बस्तर क्षेत्र से मिली है। जिनमें गढ़बोधरा की पार्श्वनाथ प्रतिमा (11वीं. शती.), घोटियाघोटा से महावीर की प्रतिमा, केसरपाल से पद्मावती, जगदलपुर के बालाजी मंदिर में अंकित तीर्थंकर प्रतिमा आदि प्रमुख हैं।

कलिंग शैली –

उड़ीसा या कलिंग के इतिहास में शैलोद्भव, भौमकर, सोम और तत्पश्चात् गंगवंशों के शासकों ने अपना आधिपत्य बनाये रखा है। इनके काल में प्रभूत संख्या में उड़ीसा के विभिन्न क्षेत्रों में मंदिरों एवं मूर्तियों का निर्माण हुआ। जिनमें भुवनेश्वर, पुरी और कोणार्क के मंदिर सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं। यहां शैव धर्म में पाशुपत शाखा का प्रारम्भ में विशेष प्रभाव था, जिसके कारण परशुरामेश्वर, भारती मठ तथा पंचपाण्डव गुफा में पाशुपत धर्म के प्रवर्तक लकुलीश की मूर्तियों की प्रधानता मिलती हैं। मधुपुर से तारा, अवलोकितेश्वर, पर्णशबरी एवं ध्यानी बुद्ध की मूर्तियां मिली है, जो बौद्ध धर्म से प्रभावित होने का प्रमाण प्रस्तुत करते हैं। दूसरी ओर परशुरामेश्वर तथा अन्य प्रारम्भिक शैली की उड़ीसा की मूर्तियों में नदी देवियों, अप्सराओं(अलसकन्या) तथा अन्य आकृतियों की चपलता और कियाशीलता पूरी तरह से स्पष्ट है। नर्तकों एवं विभिन्न वाद्यवादकों की मूर्तियों में नृत्य की लयात्मक गतिशीलता तथा आकृतियों का भावपूर्ण मुद्रा उल्लेखनीय हैं। वैताल देउल पर सप्ताश्व रथ पर सूर्य की स्थानक आकृतियां उल्लेखनीय हैं। रामायण तथा महाभारत से संबंधित कथा–प्रसंगों का भी अंकन मुख्य रूप से यहां दिखलाई पड़ता है।

प्रारम्भिक कलिंग शैली के उदाहरण में ब्राम्हण धर्म के शिव तथा उनके विभिन्न रूपों की प्रधानता के साथ ही अन्य देवों और बौद्ध तथा जैन आराध्य देवों की भी पर्याप्त मूर्तियां बनी। शिव के विभिन्न रूपों में लकुलीश, अर्द्धनारीश्वर, हरिहर, कल्याण–सुन्दर, रावणानुग्रह, उमामहेश्वर तथा अन्य ब्राम्हण देवो में गणेश, कार्तिकेय, महिषमर्दिनी, सूर्य, वराह, दिक्पाल, पार्वती आदि की मूर्तियां हैं।

11वीं.–12वीं. शती. में खण्डगिरी स्थित नवमुनि एवं बारभुजी गुफाओं में क्रमशः तीर्थंकरों की 7 और 24 मूर्तियाँ उकेरी हैं, जिनमें उनके लांछन भी उत्कीर्ण हैं। इनमें पारम्परिक यक्षियों का भी अंकन हैं।

स्ट्रेला क्रैमरिश ने भुवनेश्वर, पुरी और कोणार्क की मूर्तियों को कलिंग शैली के अन्तर्गत रखा है। भुवनेश्वर के शाक्त मंदिरो में बाह्य भित्ति पर पार्वती, अर्द्धनारीश्वर और महिषमर्दिनी तथा वैष्णव मंदिरों (अनन्त वासुदेव) पर विष्णु के वाराह, त्रिविक्रम और नृसिंह अवतार स्वरूपों की मूर्तियाँ बनी हैं। सप्तमातृका, लक्ष्मी, गज–लक्ष्मी, सरस्वती, महिषमर्दिनी एवं पार्वती की मूर्तियाँ मुख्यतः प्राप्त हैं।

भुवनेश्वर की मूर्तियों में स्पष्टतः बादामी की चालुक्य मूर्तियों का प्रभाव देखा जा सकता है। बादामी के समान ही दोनो कानों में अलग–अलग कुण्डल और एक ही आयुध द्वारा दो आयुधों का संकेत महत्वपूर्ण हैं। बादामी के समान ही यहां नाग की पूजा प्रचलित थी। कोणार्क के सूर्य मंदिर में सूर्य की मूर्ति लक्षणों के विकास की पराकाष्ठा प्रदर्शित करती है। जिनमे सप्ताश्व–रथ, ऊषा–प्रत्यूषा, दण्ड, पिंगल, गंधर्व तथा कुछ अन्य आकृतियां भी बनी है। भुवनेश्वर के मुक्तेश्वर मंदिर एवं राजा–रानी मंदिरों के विपरीत नारी मूर्तियों को किंचित मांसल दिखाकर खजुराहो शैली में ऐन्द्रिकता के भाव को अभिव्यक्त किया गया है। मंदिरों पर देव, गन्धर्व, नाग, विद्याधरों एवं सुर–सुन्दरियों की मनमोहक मुद्राओं वाली मूर्तियाँ तथा काम क्रिया के प्रभूत अंकन मिलते हैं। उड़ीसा शिल्प की विशेषता यह थी कि उसमें अन्य पार्श्ववर्तीय प्रान्तीय शैलियों के उत्कृष्ट तत्त्वों की अधिक जागरूकता के साथ मान्यता दी गई है। भौगोलिक स्थिति के कारण उड़ीसा की मूर्तिकला पर मध्य, पूर्वी और दक्षिण भारत की मूर्तिकला का स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है।

निष्कर्ष –

दक्षिण कोसल की कलचुरि कालीन मूर्तिकला व्यापक थी। यहाँ की मूर्तियों में उड़ीसा शैली, डाहल शैली, वेंगी(आन्ध्र) शैली, काकतीय शैली आदि कला शैलियों का प्रभाव विभिन्न रूपों में परिलक्षित होता है। बस्तर का क्षेत्र विभिन्न राज्य सीमाओं से घिरे होने के कारण कलाकारों के कला–चातुर्य का आदान–प्रदान अवश्यम्भावी था। इसी के मद्देनजर यहाँ का कलाकृतियाँ विशेष रूप से अपने नवीन रूप सौन्दर्य और वस्त्राभूषणों से सुसज्जित दिखाई देता है। क्षेत्रियता का प्रभाव कलाकृतियों में विशेष रूप से परिलक्षित है। रामायण काल से लेकर गुप्तकाल तक की सभी विधाएं यहां की कलाकृतियों में दिखाई देती है। तांत्रिक प्रभाव भी तंत्रयान के मद्देनजर यहां की शाक्त प्रतिमाओं में दिखाई देता है। वैष्णव प्रतिमाओं में अलंकरण की स्वाभाविकता एवं गतिशीलता का प्रखर रूप दिखाई देता है। कलाकृतियों में प्राचीन सामंजस्य एवं समन्वय की भावना का भी प्रदर्शन प्राप्त होता है। बौद्ध, जैन, ब्राम्हण आदि धर्मों की कलाकृतियों में अलंकरण की स्वाभाविकता का स्वरूप

प्रायः एक जैसा ही दिखाई पड़ता है। निष्कर्षतः बस्तर की शिल्पकला में चतुर्दिक कलाओं का प्रभाव प्रत्यक्ष रूप से दर्शनीय है।

सन्दर्भ :–

1. तिवारी, मारूतिनंदन एवं कमलगिरी, मध्यकालीन भारतीय मूर्तिकला, वाराणसी।
2. झा, मंगलानंद, दक्षिण कोसल के कलचुरि कालीन मंदिर, 2008, खैरागढ़।
3. वर्मा, कामता प्रसाद, बस्तर की स्थापत्य कला, रायपुर।
4. शुक्ल, हीरालाल, प्राचीन बस्तर अर्थात् दण्डकारण्य का सांस्कृतिक इतिहास।